IJAER/March-April-2019/Volume-8/Issue-2 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

भारतीय संविधान में लैंगिक न्याय सम्बन्धित प्रावधान : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. मेहराज जहाँ, एसिस्टेंट प्रोफेसर, विधि विभाग, बी0 एस0 एम0 डिग्री कॉलिज, रूड़की

सार–

प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत भारत में लैंगिक न्याय की स्थापना को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया गया है। इस सन्दर्भ में व्यापक प्रयास पुनर्जागरण आन्दोलन में देखने को मिलता है। पुनर्जागरण आन्दोलन में स्त्रियों की दयनीय स्थिति में सुधार हेतु अनेक समाज सुधारकों तथा बुद्धिजीवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पुनर्जागरण युग से लैंगिक न्याय की चेतना ने राजनीतिक सक्रियता के युग में संगठित रूप ले लिया। राजनीतिक सक्रियता के चरण में महिलाओं की दुर्दशा पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए उनके सुधार की दिशा में प्रयास किए गए। जब भारत स्वतंत्र हुआ और भारतीय संविधान के निर्माण की दिशा में कार्य प्रारम्भ हुआ तब संविधान में लैंगिक न्याय हेतु कतिपय प्रावधान करने पर बल दिया गया, किन्तु इन प्रावधानों को संविधान में सम्मिलित करना संविधान निर्माताओं के लिए सरल नहीं था। जब भारतीय संविधान में महिलाओं हेतु कुछ विशेष प्रावधानों को सम्मिलित करने की बात की गई तो इस पर अनेक समूहों ने असहमति व्यक्त की। महिलाओं के सन्दर्भ में सम्पत्ति के अधिकार, उत्तराधिकार सम्बन्धी अधिकार, विवाह सम्बन्धी अधिकार इत्यादि पर संविधान सभा में एक लम्बी बहस के उपरान्त कुछ सीमित मात्रा में इन्हें स्वीकार किया गया।

प्रस्तावना–

वैश्विक स्तर पर लैंगिक न्याय की संकल्पना को स्थापित करने के प्रयास तथा महिलाओं की दोयम दर्जे की स्थिति समाप्त करने हेतु किए गए संघर्षों का प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ा। चूंकि भारतीय समाज का आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक ढ़ाँचा ही ऐसा रहा है जिसमें स्त्रियों की अधीनता कायम रही है। परंपराओं, रूढ़ियों, परिवार के मूल्यों और आदर्शों के बीच भारतीय महिलाएं सदियों से शोषण का शिकार रहीं हैं। अशिक्षा ने महिलाओं को उनके अधिकारों से अनभिज्ञ रखा। वहीं बाल–विवाह, बहुपत्नी विवाह, दहेज प्रथा, विधवा विवाह निषेध, सती प्रथा जैसी प्रथाओं ने महिलाओं को निम्नतर स्तर पर ला दिया। इस सन्दर्भ में जब पाश्चात्य देशों में लैंगिक न्याय हेतु संघर्ष प्रारम्भ हुआ तब भारतीय समाज में भी स्त्रियों के दयनीय स्थिति का प्रश्न मुखरित हुआ। इसी क्रम में भारतीय समाज में भी लैंगिक न्याय की स्थापना हेतु चेतना विकसित की जाने लगी। स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरुक करने हेतु तथा समाज में उनकी सम्मानपूर्ण स्थिति लाने हेतु भारत में भी एक व्यापक आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। भारत में लैंगिक न्याय की स्थापना हेतु किए गए प्रयासों को दो चरणों में देखा जा सकता है–

1– सुधारात्मक युग

2– राजनीतिक सक्रियता का युग

सुधारात्मक युग–

इस युग का प्रारम्भ वस्तुतः पुनर्जागरण आन्दोलन से होता है। भारत का बौद्धिक पुनर्जागरण आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का एक महत्वपूर्ण कारण था। जिस प्रकार इटली के पुनर्जागरण तथा जर्मनी के धर्म सुधार आन्दोलन ने यूरोपीय राष्ट्रवाद के उदय के लिए बौद्धिक आधार का काम किया था, उसी प्रकार भारतीय सुधारकों तथा धार्मिक नेताओं के उपदेशों ने देशवासियों में स्वायत्त तथा आत्मनिर्णय पर आधारित राजनीतिक जीवन का निर्माण करने की इच्छा उत्पन्न की। भारतीय आत्मा के जागरण की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति सर्वप्रथम दर्शन, धर्म तथा संस्कृति के क्षेत्रों में हुई, और राजनीतिक आत्मचेतना का उदय उसके अपरिहार्य परिणाम के रूप में हुआ। वास्तव में किसी भी युग में नवजागरण आन्दोलन सामान्यतः धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं और कुरीतियों को लेकर किए गए हैं। भारतीय पुनर्जागरण का आधार भी धार्मिक व सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने पर बल देता है। इसके द्वारा समाज के नवीनीकरण हेतु एक नयी वैचारिकी का निर्माण किया गया है।

भारतीय पुनर्जागरण सामाजिक सुधार तथा स्त्री उत्थान को लेकर एक विशाल और व्यापक आन्दोलन था। जिसने एक तरफ समाज की कुरीतियों का खंडन किया वहीं दूसरी तरफ स्त्रियों के साथ हो रहे अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण के विरूद्ध आवाज उठायी। प्रारम्भ में भारतीय पुनर्जागरण आन्दोलन बौद्धिक पुनर्जागरण के रूप में दिखाई देता है। जिसने शिक्षा, कला, साहित्य आदि को प्रभावित किया। इस युग की बौद्धिक चेतना बुद्धिजीवी वर्ग की देन थी। इन बुद्धिजीवियों में राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, गोविन्द रानाडे, केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्र ठाकुर, इत्यादि प्रमुख है। इन महापुरुषों ने मिलकर तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध अभियान चलाया और स्त्रियों की स्थिति सुधारने हेतु मार्ग प्रशस्त किया। इन प्रत्येक समाज सुधारकों के अथक प्रयास से अनेक प्रकार की धार्मिक–सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने में सफलता प्राप्त हुई तथा नारी मुक्ति आन्दोलन को एक नयी दिशा प्रदान की गई। साथ ही इन सभी समाज सुधारकों ने महिलाओं के जीवन से सम्बन्धित कुरीतियों और कठिन परिस्थितियों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करने में निर्णायक भूमिका निभायी। वे इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि यदि सामूहिक हित के सभी कामों में महिलाओं को समान रूप से भागीदारी नहीं दी गई तो देश न तो स्वतंत्र हो सकेगा और न ही प्रगति कर सकेगा।

नारी मुक्ति की दिशा में नव–जागरण के अग्रणी बुद्धिजीवी और समाज सुधारकों में सर्वप्रथम राजा राम मोहन राय रहें हैं। आधुनिक भारत में स्त्रियों के अधिकारों का समर्थन करने वाले वे ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने स्त्रियों की पराधीनता के विरूद्ध विद्रोह किया। उनके सामाजिक सुधारों का मुख्य केन्द्र स्त्री समस्याएं रहीं हैं। वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सती प्रथा जैसी सामाजिक कुरीति पर एक व्यापक दृष्टिकोण रखते हुए, इसके विरूद्ध कानून बनवाया। उस समय (हिन्दू धर्म में) स्त्री द्वारा अपने पति की मृत्यु पर उसकी चिता पर जलकर सती हो जाना एक स्त्री धर्म माना जाता था। राजा राम मोहन राय ने इस प्रथा के विरूद्ध आवाज उठायी और इसके विरूद्ध कानूनी मदद ली। राधा कुमार के शब्दों में ''इस बात पर बल देते हुए कि वीरता महिलाओं के दैनिक जीवन का अंग है, राय ने उनकी वीरता को कभी–कभार प्रदर्शित करने के बजाय दैनिक जीवन में उतारने की कोशिश की; हालांकि किसी हद तक इससे वीरता अवरूद्ध हुई और भारतीय (हिन्दू) स्त्रियों को अनिवार्य और निरंतर रूप से कुर्बानी देना एक बोझ नजर आने लगा।'' सती प्रथा एक ऐसी प्रथा है जो स्त्रियों

के स्वतंत्र अस्तित्व को ही नकारती है। इस प्रथा से सम्पूर्ण भारतीय पितृसत्तात्मक समाज का वास्तविक स्वरूप भी प्रकट होता है जो कि एक स्त्री का जीवन तथा सम्पूर्ण अस्तित्व उसके पति के साथ ही जोड़कर देखता है। पति के न रहने पर पत्नी को भी जीने का अधिकार नहीं है। यह एक ऐसी प्रथा है जो भारतीय स्त्रियों के हीनतम स्थिति को परिलक्षित करती है। राजा राम मोहन राय ने जब इस प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया तब भारतीय समाज के धर्मवेत्ताओं द्वारा इसका कड़ा विरोध किया गया। परन्तु व्यापक विरोधों के बावजूद राजा राम मोहन राय के अथक प्रयास से इस प्रथा के विरूद्ध कानून बनाया गया तथा सती प्रथा के कृत्य को गैरकानूनी घोषित किया गया।

इसके साथ ही राजा राम मोहन राय ने बाल–विवाह का विरोध, विधवा पुनर्विवाह की मांग तथा स्त्री शिक्षा का पुरजोर समर्थन किया। इन्होंने ब्रह्म समाज जैसी संस्था के द्वारा जनजीवन में व्याप्त जड़वादी अंधविश्वास व रूढ़ियों के विरूद्ध शंखनाद किया। ब्रह्म समाज में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, राष्ट्रीय एकता, भाईचारे तथा सभी सामाजिक संस्थाओं के लोकतंत्रीकरण को महत्व दिया गया। अतएव यह प्रथम संस्था थी जिसने सम्पूर्ण राष्ट्र को जगाकर एक नए युग के निर्माण हेतु संगठित किया।

ब्रह्म समाज ने नारी शिक्षा के प्रसार को वरीयता देते हुए इस बात का समर्थन किया कि नारी का शिक्षित होना न केवल उसके लिए अपितु सम्पूर्ण समाज के हित में अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए स्त्रियों को जागरुक किया जाए, जिससे वे अपने अधिकारों को प्राप्त करने हेतु संघर्ष कर सकें, साथ ही अंधविश्वासों, धार्मिक आडम्बरों व सामाजिक कुरीतियों का विरोध कर सकें। राजा राम मोहन राय द्वारा स्त्री सुधार सम्बन्धी किए गए समस्त प्रयास तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम था। क्योंकि इन प्रयासों ने समाज में फैले धर्मान्धता तथा रूढ़िवादिता पर कठोर प्रहार किया तथा उन सामाजिक मूल्यों को समाप्त करने पर बल दिया जो परंपरागत तथा अतार्किक रूप से सामाजिक प्रचलन में थीं। लैंगिक न्याय को स्थापित करने के सन्दर्भ में उनका सबसे महत्वपूर्ण प्रयास था, 'स्त्रियों को एक मनुष्य के रूप में स्थापित करना'।

सुधारात्मक युग के अन्तर्गत ही समाज सुधारक तथा शिक्षाविद् ईश्वर चंद्र विद्यासागर भारतीय समाज के स्वरूप को बदलने हेतु अनवरत प्रयास किया। तत्कालीन समाज में बाल विवाह जैसी कुप्रथा अपनी जड़ जमा चुकी थी। समाज में विधवा विवाह को घृणित दृष्टि से देखा जाता था। इसी कारण समाज में महिलाओं विशेषकर बाल विधवाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। कुछ तथाकथित कुलीन वर्गीय ब्राह्मणों में यह व्यवस्था थी कि पत्नी के निधन हो जाने पर वह किसी भी आयु में दूसरा विवाह कर सकते हैं। यह आयु वृद्धावस्था भी हो सकती थी। पत्नी के रूप में वह कम उम्र किशोरी का ही चयन करते थे और जब उनकी मृत्यु हो जाती थी तो उस विधवा को समाज से अलग कर उसके साथ पाशविक व्यवहार किया जाता था। ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने समाज में महिलाओं के प्रति प्रचलित इस प्रकार की कुरीतियों पर प्रहार करते हुए बहुविवाह तथा बालविवाह का कड़ा विरोध किया। साथ ही विधवा पुनर्विवाह तथा स्त्री शिक्षा का पुरजोर समर्थन किया। इन मुद्दों पर उनके योगदान के फलस्वरूप ही 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित हुआ जिसके अन्तर्गत विधवा पुनर्विवाह को कानूनी मान्यता दी गई। उन्होंने स्त्री शिक्षा का समर्थन करते हुए घर–घर जाकर लड़कियों को स्कूल भेजने तथा शिक्षा ग्रहण करने का अभियान चलाया। इस अभियान के अन्तर्गत उन्होंने बालिकाओं के

लिए कई स्कूल खोलें। उनका यह विश्वास था कि भारत में महिलाओं की दयनीय स्थिति तथा उनके प्रति होने वाले सभी प्रकार के अन्याय और भेदभाव को केवल शिक्षा के माध्यम से ही समाप्त किया जा सकता है। इसलिए ईश्वर चंद्र विद्यासागर अनवरत रूप से स्त्री तथा पुरुष की समान शिक्षा पर बल देते रहें।

इस प्रकार 19 वी सदी के समाज सुधार आन्दोलन ने महिलाओं के विरूद्ध अन्याय को एक सामाजिक कुरीति के रूप में स्वीकार करके तथा उसका व्यापक विरोध कर आधुनिक महिला आन्दोलन के लिए एक पृष्ठभूमि तैयार की। जहाँ सामंती और पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्रियों को घर की चारदीवारी में बंद कर रखा था वहीं पुनर्जागरण आन्दोलन ने शिक्षा के माध्यम से स्त्रियों की गुलामी की प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया। पुनर्जागरण आन्दोलन स्त्रियों की शिक्षा पर अधिक बल देता है और समाज सुधार हेतु स्त्रियों की शिक्षा को अनिवार्य घोषित करता है। इसके अतिरिक्त पुनर्जागरण आन्दोलन ने ऐसे अनेक धार्मिक मान्यताओं का भी खंडन किया जिसके कारण स्त्रियों को झूठे आडम्बरों तथा कर्मकांडों का शिकार बनाया गया था। धर्म तथा आस्था के नाम पर स्त्रियों को प्रताड़ित करने की परम्परा को पुनर्जागरण आन्दोलन के दौरान समाप्त करने का प्रयास किया गया। इस आन्दोलन ने स्त्री अधीनता की सूचक प्रथाओं जैसे– सती–प्रथा, बाल–विवाह, विधवा विवाह का निषेध इत्यादि को समाप्त करके समाज में स्त्रियों को गरिमामय जीवन जीने को प्रेरित किया। इस आन्दोलन ने समाज में स्त्रियों के प्रति सोच को एक नई दिशा प्रदान की तथा स्त्रियों के अन्दर स्वयं के विकास की एक नई चेतना जागृत की।

राजनीतिक सक्रियता का युग–

19वी शताब्दी के अंत तक समाज सुधार का राष्ट्रवाद से अलगाव प्रारम्भ हुआ और यहीं से राजनीतिक सक्रियता के युग का प्रारम्भ होता है। जहाँ एक ओर समाज सुधार आन्दोलन में स्त्रियों से सम्बन्धित विषयों को अधिक महत्व दिया गया, वहीं राजनीतिक सक्रियता के युग में स्वतंत्रता से सम्बन्धित मुद्दों को वरीयता प्रदान की गई। भारत एक लम्बे समय तक ब्रिटिश शासन का गुलाम रहा। ब्रिटिश शासन का गुलाम रहकर भारतवासियों ने इस बात का अनुभव किया कि परतंत्र रहकर उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। क्योंकि ब्रिटिश शासन में भारत का इतना अधिक दोहन किया गया कि भारतीय सामाजिक संरचना, आर्थिक संरचना, सांस्कृतिक संरचना, इत्यादि तहस–नहस हो गई। ऐसे में भारत के लोगों ने सभी प्रकार के आन्तरिक भेदभाव भुलाकर भारत की स्वतंत्रता को एकमात्र लक्ष्य के रूप में स्वीकार करना आवश्यक समझा तथा ब्रिटिश शासन को भारत से जड़ से समाप्त करने हेतु स्वतंत्रता संग्राम छेड़ दिया। स्वतंत्रता हेतु संग्राम में पुरुषों के साथ–साथ महिलाओं ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यद्यपि इस युग में सामाजिक, वैधानिक, आर्थिक व धार्मिक क्षेत्र में भारतीय पितृसत्तात्मक ढ़ाँचे में महिलाएं हाशिए पर थीं परन्तु जब देश की स्वतंत्रता हेतु महिलाओं का आह्वान किया गया तब वे अपनी परम्रागत स्थिति को भूलकर स्वतंत्रता संग्राम में शामिल हो गईं। साथ ही उन्होंने एकजुट होकर देश की स्वतंत्रता के लिए कार्य करना प्रारम्भ किया। इसके साथ ही उन्होंने अपनी भी स्वतंत्रता तथा अधिकारों को प्राप्त करने की दिशा में कार्य करना जारी रखा।

इस दिशा में भीका जी कामा ने महिला क्रान्तिकारी के रूप में सक्रिय राजनीति में भाग लिया। उन्होंने इग्लैंड से लेकर फ्रांस तक भारतीय स्वतंत्रता हेतु प्रयास किए। मैडम कामा भारत तथा विदेशों में क्रान्तिकारी

आन्दोलनों में श्यामजी कृष्ण वर्मा, एस आर राणा तथा अन्य लोगों के साथ जुड़ी थीं। उन्होंने 1907 में स्टुटगार्ड में सम्पन्न हुए इंटरनेशनल सोशलिस्ट काँग्रेस में भाग लिया जहाँ उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय झंडा फहराकर भारत की आजादी का समर्थन करने के लिए काँग्रेस को सहमत किया। सन् 1909 में उनके गुट ने भारत की आजादी के लिए वंदेमातरम् नामक मासिक पत्रिका जेनेवा में प्रकाशित किया। अपने एक लेख में मैडम कामा ने कहा कि मैं आप सभी देशभक्तों से अपील करती हूँ कि आप अधिक से अधिक समय तक पश्चिम में रहकर सभी प्रकार के भौतिक प्रशिक्षण प्राप्त करें। इसमें सबसे महत्वपूर्ण है निशानेबाजी क्योंकि वह दिन दूर नहीं जब आपको स्वराज प्राप्त करने के लिए भारत भूमि से अँग्रजों को खदेड़ने हेतु अँग्रजों पर गोली चलाने का आह्वान किया जाएगा।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय कमलादेवी चटोपाध्याय ने अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की संस्थापक सदस्यता के साथ–साथ सम्मेलन की सक्रिय सचिव के रूप में उन्होंने सम्पूर्ण भारत में सम्मेलन की शाखाएं स्थापित की। कमला देवी ने कांग्रेस की सदस्य के रूप में 1921 में असहयोग आंदोलन में भाग लिया। 1929 में उन्होंने अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की सदस्य के रूप में प्राग में 'वीमेंस लीग फॉर पीस एंड फ्रीडम' की बैठक में भाग लिया। उन्होंने अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की संस्थापक सदस्य तथा उसकी अध्यक्ष के रूप में उसके बुनियादी ढ़ाँचे, नीतियों तथा कार्यक्रमों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। कमलादेवी चटोपाध्याय दूसरे दशक के मध्य में मुक्त राजनीतिक निर्वाचन के लिए खड़ी होने वाली प्रथम भारतीय महिला थीं। ऐसे में जहाँ एक तरफ भारतीय समाज महिलाओं को मतदान तक का अधिकार नहीं देना चाहता था वहीं निर्वाचन के लिए खड़े होकर उन्होंने महिला और पुरुष के समान निर्वाचन के अधिकार को रेखांकित किया।

आजादी की लड़ाई के दौरान संघर्ष हेतु सक्रिय दुर्गाबाई देशमुख का योगदान उल्लेखनीय है। उन्होंने प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं के संगठित प्रयास के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाने का प्रयास किया। दुर्गाबाई उन भारतीय महिलाओं की प्रतिनिधि थीं जिन्होंने देश के सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से प्रताड़ित और उपेक्षित महिला वर्ग के कल्याण की दिशा में कार्य किए। नमक सत्याग्रह के दौरान दुर्गाबाई को तीन बार गिरफ्तार किया गया। जब उन्हें जेल भेजा गया तो उनको वहाँ की महिला कैदियों की दुर्दशा तथा अज्ञानता देखकर अत्यन्त कष्ट हुआ। उन्होंने महिला कैदियों की दशा सुधारने का व्रत लिया तथा इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य भी किए। 1937 में उन्होंने आन्ध्र महिला सभा (AMS) की स्थापना की। उनका उद्देश्य महिलाओं की सभी प्रकार से सहायता करना था। AMS के अन्तर्गत महिलाओं के खानपान, बच्चों की उचित देखभाल, अशक्तों की देखभाल, स्वास्थ्य एवं शिक्षा, इत्यादि पर बल दिया गया। उन्होंनेमहिलाओं की अशिक्षा, अज्ञानता, सामाजिक अन्यायों के विरूद्ध स्वास्थ्य, शिक्षा तथा पोषण से सम्बन्धित संस्थाओं की स्थापना करके धर्मयुद्ध छेड़ दिया।

इस चरण में लैंगिक न्याय की स्थापना हेतु राजकुमारी अमृत कौर का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वह एक प्रमुख नारीवादी तथा 1926 में AIWC (All India Women's Conference) को स्थापित करने वाले सदस्यों में से एक थीं। उन्होंने बच्चों की शारीरिक शिक्षा तथा खेल को अधिक महत्व देते हुए भारत में राष्ट्रीय क्रीडा क्लब की स्थापना की। साथ ही लड़कियों की शारीरिक शिक्षा तथा खेलकूद पर भी बल दिया। उन्होंने

महिलाओं के मुद्दों जैसे– बाल विवाह, परदा प्रथा तथा समाज में महिलाओं की दुर्दशा को चिन्हित करते हुए इनमें सुधार की दिशा में प्रयास किए। उनका यह मानना था कि महिलाओं को संगठित होकर अपने राजनीतिक शक्ति को स्थापित करना चाहिए। 1930 के दौरान राजकुमारी अमृत कौर महिला मताधिकार के अभियान में जुट गई। उन्होंनेइस बात को स्थापित करने का प्रयास किया कि जब तक महिलाओं के पास राजनीतिक अधिकार नहीं होंगे तब तक उनका वास्तविक सुधार सम्भव नहीं हो सकेगा। उनके समर्थन से 1933 में भारतीय विधानसभा से कुछ महिला सदस्यों को संविधान में सुधार हेतु ब्रिटिश संयुक्त संसदीय समीति के पास भेजा गया, जिनके द्वारा महिला मताधिकार को प्रमुखता दी गई।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में एनी बेसेंट का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उपनिवेशवाद के विरूद्ध संघर्ष में उन्होंने भारतवासियों का साथ दिया। साथ ही उनका विश्वास स्त्री–पुरुष के समान अधिकारों में था। उनके अनुसार ''पुरुष का अधिकार एक स्वीकार्य सिद्धान्त बन चुका है, परन्तु दुर्भाग्यवश विश्व के दृष्टिकोण में वह केवल पुरुषों के अधिकार हैं। यह अधिकार मानवीय अधिकार न होकर केवल लैंगिक अधिकार हैं। अतः जब तक ये लैंगिक अधिकार मानवीय अधिकार नहीं हो जाते तब तक समाज एक औचित्यपूर्ण तथा सुरक्षित नींव पर खड़ा नहीं हो सकता। स्त्रियों के अधिकारों (स्वतंत्रता, संपत्ति तथा सुरक्षा) को नकारने का अर्थ है मानवता को नकारना, तथा यह मानने से इंकार करना कि स्त्रियाँ मानवता का एक अंग हैं। ऐसे में या तो सभी मनुष्यों के समान अधिकार हों या किसी को कोई अधिकार न हो।'' श्रीमती बेसेंट को जब कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया तब उनके प्रभाव में आकर कांग्रेस ने यह मत व्यक्त किया कि स्थानीय सरकारों तथा शिक्षा से जुड़ी संस्थाओं में चुनाव का जो मापदंड पुरुषों के लिए अपनाया जाता है, वही मापदंड स्त्रियों के लिए भी अपनाया जाए।

एक प्रमुख राष्ट्रवादी तथा महिला अधिकारों की समर्थक सरोजनी नायडू, कांग्रेस एवं भारतीय समाज सम्मेलन की सदस्य के रूप में महिला अधिकारों के लिए सदैव संघर्षरत रहीं। स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए वे जिन अभियानों में सक्रिय रहीं, उनमें विधवा पुनर्विवाह अभियान, स्त्री शिक्षा तथा स्त्रियों की मुक्ति के अभियान प्रमुख थे। शिक्षा के सन्दर्भ में उन्होंने कलकत्ता में 1906 में सम्पन्न हुए भारतीय समाज सम्मेलनमें कहा कि ''शिक्षा एक ऐसा असीम, सुन्दर तथा अपरिहार्य वातावरण है जिसमें हम जीते, रहते तथा अन्य कार्य करते हैं। क्या कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य को ईश्वर द्वारा प्रदत्त शुद्ध वायु के उसके जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित कर सकता है? तो फिर कोई भी मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य को उसके जीवन एवं स्वतंत्रता की अविस्मरणीय विरासत से कैसे वंचित कर सकता है। आपके पिताओं ने आपकी माताओं को इस जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित करके आपको लूटा है। इसलिए मै आपको चेतावनी देती हूँ कि आप अपनी स्त्रियों के परंपरागत अधिकारों को बहाल करें। आप अपनी स्त्रियों को शिक्षित करें और देखें कि राष्ट्र अपनी रक्षा कर लेगा क्योंकि पालना झुलाने वाले हाथ ही विश्व पर शासन करते हैं।'' इस प्रकार सरोजनी नायडू ने समाज की पितृसत्तात्मक संरचना पर प्रहार किया तथा स्त्रियों के स्वतंत्रता के अधिकारों की वकालत की। उन्होंने अपने प्रयास से महिलाओं को अधीनता की स्थिति से बाहर निकलकर अपनी चेतना जागृत करने का सुझाव दिया तथा समाज में उनकी महत्वपूर्ण भागीदारी को उल्लेखित करने का प्रयास किया।

स्वतंत्रता आंदोलन के साथ–साथ महिलाओं द्वारा लैंगिक न्याय हेतु संघर्ष में महिलाओं के मताधिकार का मुद्दा अत्यन्त उल्लेखनीय है। महिलाओं को मताधिकार से वंचित रखना इस बात का संकेत था कि वह राजनीतिक दायरे से बाहर हैं। 1917 में सरोजनी नायडू के नेतृत्व में सर्वप्रथम महिलाओं को पुरुषों के समान ही मताधिकार के अधिकार की मांग की गई। 1919 में जब मताधिकार के प्रश्न पर विचार–विमर्श करने के लिए साउथ बोरो कमीशन भारत आया तो श्रीमती एनी बेसेन्ट के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल भारतीय महिलाओं के पक्ष में बात करने हेतु आयोग से मिला। तमाम प्रयासों के बाद 1920 में सर्वप्रथम मद्रास विधान परिषद ने महिलाओं को मताधिकार का अधिकार प्रदान किया। 1928 में कांग्रेस ने लिंग समानता तथा वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। साथ ही 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन में कानून की नजर में सभी धर्मों, जातियों तथा लिंगों की समानता के सिद्धान्त को मान लिया गया। साथ ही इन आधारों पर रोजगार तथा कोई पद पाने में भेदभाव न करना एवं वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त को स्वतंत्रता के पश्चात लागू करने का निश्चय किया गया।

समाज सुधार तथा राष्ट्रीय आंदोलन के इस दौर में नियम, कानूनों तथा नैतिकता की एकरुपता के नाम पर विभिन्न जातियों, धर्मों, वर्णों, सामाजिक व्यवस्थाओं की स्त्रियों को सवर्ण जातियों के धर्मों में प्रतिपादित शुद्ध आचरण, तथा नैतिकता के दायरे में लाने के प्रयास किए गए। महिलाओं के प्रति समाज में व्याप्त सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों को खण्डित करते हुए एक नई वैचारिकी विकसित करने का प्रयास किया गया जो कि लैंगिक न्याय की स्थापना में सहायक हो सके।

भारतीय संविधान का निर्माण एवं लैंगिक न्याय–

भारतीय महिलाओं ने भारत की स्वतंत्रता की नींव रखने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। स्वतंत्रता के पश्चात भारत की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने हेतु एक उपयुक्त संविधान की आवश्यकता महसूस की गई। भारत हेतु एक ऐसे संविधान के निर्माण पर बल दिया गया जिसमें सभी भारतीय स्वतंत्रतापूर्वक तथा समानतापूर्वक एक न्यायपूर्ण जीवन का निर्वाह कर सके। साथ ही संविधान में यह लक्ष्य रखा गया कि स्वतंत्र भारत का स्वरूप ऐसा हो जिसमें गरीब, असहाय, कमजोर भी एक अच्छे जीवन का निर्वाह कर सके तथा सभी प्रकार के भेदभावों का उन्मूलन कर एक समतामूलक समाज का निर्माण किया जा सके।

इस क्रम में स्वतंत्रता के पश्चात जब भारतीय संविधान का निर्माण प्रारम्भ हुआ तब संविधान निर्माता इस बात से भलीभांति परिचित थे कि महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु उनके लिए संविधान में कुछ विशेष प्रावधान करने की आवश्यकता है। उन्हें ऐसे अधिकार प्रदान करने की आवश्यकता है जो उनकी दयनीय स्थिति को सुधारने में उनकी मदद करें। परन्तु यह इतना सरल भी नहीं था क्योंकि समाज का एक बड़ा हिस्सा रूढ़िवादी विचारों से ग्रसित था और वह महिलाओं को अधिक अधिकार देने के पक्ष में नहीं था। ऐसे में भारतीय संविधान सभा में महिलाओं के अधिकारों को लेकर एक लम्बी बहस देखने को मिलती है।

संविधान सभा में महिलाओं के अधिकार का स्वरूप कैसा होना चाहिए, इस पर एक व्यापक विचार–विमर्श देखने को मिलता है। संविधान सभा में महिला अधिकारों के प्रश्न पर इस विचार–विमर्श में स्वतंत्र भारतीय समाज का स्वरूप निर्धारित होता है। क्योंकि जहाँ एक तरफ स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज अपने लिए एक नई दिशा तय करने जा रहा था, जिसमें समाज के सार्वभौमिक विकास का लक्ष्य रखा गया। वहीं दूसरी तरफ

महिला सुधार हेतु किए जाने वाले प्रावधानों के प्रति अन्तर्विरोध भी दिखाई पड़ता है। संविधान सभा में महिलाओं के अधिकार के सन्दर्भ में दो पक्ष देखने को मिलते हैं– एक जो महिलाओं के विभिन्न अधिकारों के समर्थक हैं, दूसरे जो महिलाओं को व्यापक अधिकार देने के पक्ष में नहीं हैं।

संविधान सभा में जब विचार–विमर्श प्रारम्भ हुआ तब सर्वप्रथम भारतीय नागरिकों हेतु मौलिक अधिकारों को लिखित रूप देने का प्रयास किया गया। इसके अन्तर्गत भारत के सभी नागरिकों को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष सबको समान रूप से मौलिक अधिकार प्रदान किए गए। मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत संविधान सभा में नागरिकों के समानता के अधिकारों, स्वतंत्रता के अधिकारों, शोषण के विरूद्ध अधिकारों, धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकारों, अल्पसंख्यक वर्गों के हितों के संरक्षण सम्बन्धित अधिकारों तथा संवैधानिक उपचारों से सम्बन्धित अधिकारों पर एक विस्तृत विवेचना की गई। समानता के अधिकार के अन्तर्गत इस बात पर बल दिया गया कि राज्य किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त किसी नागरिक के विरूद्ध धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या इनमें से किसी के आधार पर सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों में पहुँच, या पूर्णतः या भागतः राज्य–निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग, के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध किया गया। समानता के अधिकारों के अन्तर्गत ही इस बात पर बल दिया गया कि राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने का अधिकार होगा।

समानता के अधिकारों के अतिरिक्त संविधान सभा में स्वतंत्रता के अधिकारों पर भी विस्तृत चर्चा की गई। इस चर्चा में व्यक्तियों की वाक एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शान्तिपूर्वक सभा या सम्मेलनकरने की स्वतंत्रता, संघ बनाने की स्वतंत्रता, भारत में कही भी अबाध रूप से भ्रमण की स्वतंत्रता, सम्पत्ति रखने तथा भारत में कहीं भी व्यवसाय करने की स्वतंत्रता पर प्रमुख बल दिया गया।

महिलाओं के विभिन्न अधिकारों तथा उनकी सुरक्षा हेतु सबसे पहले आवश्यकता थी, सम्पूर्ण देश में एकसमान कानून सभी के लिए हो। चूंकि भारतीय समाज विविधताओं से भरा हुआ है। यहाँ पर भिन्न–भिन्न धर्मों को मानने वाले लोग निवास करते हैं, और सभी के अपने निजी कानून हैं। ऐसे में यहाँ पर निजी कानूनों में असमानताए व्याप्त हैं। इन असमानताओं को समाप्त करना महिलाओं के पक्ष में अति आवश्यक था क्योंकि इन असमानताओं से सबसे ज्यादा महिलाएं ही पीड़ित होती हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु संविधान सभा में समान नागरिक संहिता का प्रावधान लाया गया। इसके लागू होने के पश्चात् किसी भी समुदाय के कोई निजी कानून नहीं होते। सभी धर्म के लोगों के निजी मामलों के साथ सभी तरह के मामले एक ही कानून के अन्तर्गत आते। इस सन्दर्भ में के. एम. मुन्शी ने संविधान सभा के सदस्यों को यह समझाने का प्रयास किया कि एक समान नागरिक संहिता समाज में लिंगभेद को समाप्त करके लैंगिक समानता स्थापित करने में कारगर सिद्ध होगी।

डा0 भीम राव अम्बेडकर ने समान नागरिक संहिता के पक्ष में दलील देते हुए कहा कि 'मुझे डर है कि मैं इस अनुच्छेद से सम्बन्धित संशोधनों को स्वीकार नहीं कर सकता। इस विषय पर विचार करने में मै इस प्रश्न के गुण–दोषों में नहीं जाऊंगा कि क्या इस देश में एक नागरिक संहिता होनी चाहिए या नहीं। इन संशोधनों के समर्थन में मेरे मित्र श्री हुसैन इमाम ने पूछा है कि क्या भारत जैसे विशाल देश के लिए एक

समान विधि संहिता का होना संभव और वांछनीय होगा? अब मुझे यह स्वीकार करना होगा कि इस सीधी सी बात के कारण मुझे इस कथन पर घोर आश्चर्य है कि इस देश में मानवीय सम्बन्धों के लगभग प्रत्येक पहलु को अपने दायरे में लिए हुए पहले ही एक समान विधि संहिता है। हमारे पास एक पूरा क्रिमिनल कोड है जो पूरे देश में चलन में है और जो दंड संहिता और क्रिमिनल प्रोसीजर कोड में समाहित है। हमारे पास सम्पत्ति हस्तांतरण कानून है जो सम्पत्ति से जुड़े सम्बन्धों का नियमन करता है और जो पूरे देश में चलन में है। इसके अतिरिक्त नेगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट है और मै ऐसे असंख्य कानूनों का हवाला दे सकता हूं जो यह साबित करेंगे कि इस देश में व्यावहारिक रूप से एक नागरिक संहिता है जिसकी अन्तर्वस्तु समान है और जो पूरे देश में लागू है। केवल एक क्षेत्र ऐसा है जिस पर दीवानी कानून अब तक अपनी पकड़ नहीं बना पाया है और वह है विवाह और उत्तराधिकार।'

आगे उन्होंने पर्सनल लॉ को बचाने के प्रश्न पर कहा कि 'अगर संविधान में इस तरह के क्लॉज का समावेश किया गया तो वह भारत के विधानमंडलों को किसी भी सामाजिक विषय पर कानून बनाने में अक्षम बना देगा। इस देश में धार्मिक धारणाएं इतनी व्याप्त हैं कि वे जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन के प्रत्येक पहलु को अपने दायरे में लिए हुए हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है जो धर्म न हो और अगर पर्सनल लॉ को बचाना है तो मुझे पक्का विश्वास है कि सामाजिक विषयों पर कानून बनाने का कार्य ठप पड़ जाएगा। मैं नहीं समझता कि उस तरह की स्थिति को स्वीकार करना सम्भव है। यह कहने में कुछ भी असाधारण नहीं है कि हमें अब से धर्म को इस तरह से पारिभाषित करने की दिशा में काम करना चाहिए कि हम विश्वासों और ऐसे विधि–विधानों से आगे नहीं जाएंगे जो ऐसे अनुष्ठानों से जुड़े हों जो आवश्यक रूप से धार्मिक हैं। यह आवश्यक नहीं है कि इस तरह के कानून, उदाहरण के लिए काश्तकारी या उत्तराधिकार से सम्बन्धित कानून, धर्म द्वारा शासित हों। यूरोप में ईसाइयत है, परन्तु ईसाइयत का अर्थ यह नहीं है कि पूरी दुनिया के ईसाई या यूरोप के किसी भाग में बसे ईसाइयों का उत्तराधिकार के मामले में एक जैसा कानून हो। ऐसी कोई चीज अस्तित्व में नहीं है। मै व्यक्तिगत रूप से यह नहीं समझ पाता कि धर्म का दखल इतने विस्तृत क्षेत्र में क्यों होना चाहिए कि वह पूरे जीवन को ही समेट ले और विधानमंडल को उस क्षेत्र में घुसने न दे।'

तमाम दलीलों के उपरान्त भी संविधान सभा में इस प्रावधान की कड़ी निंदा की गई। साथ ही इस प्रावधान का बहिष्कार किया गया। भारत में रहने वाले भिन्न–भिन्न धार्मिक समुदायों को यह बात बिल्कुल स्वीकार नहीं थी कि उनके निजी मामलों में कोई हस्तक्षेप करे। समान नागरिक संहिता को अल्पसंख्यक समुदायों के हित के विरूद्ध तथा राज्य द्वारा उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक तथा धार्मिक पहचान को नष्ट करने के प्रयास के रूप में देखा गया। किन्तु तमाम विरोधों के पश्चात समान नागरिक संहिता के प्रावधान को भविष्य पर टालते हुए इसे नीति निर्देशक तत्व के रूप में संविधान में सम्मिलित कर लिया गया।

संविधान सभा समान नागरिक संहिता के प्रावधान को तो लागू नहीं कर पायी किन्तु लैंगिक न्याय के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए हिन्दू निजी कानूनों को संहिताबद्ध करने की दिशा में प्रयत्न प्रारम्भ हुए। इसके अन्तर्गत संविधान सभा में प्रारूप समिति के अध्यक्ष डा0 भीम राव अम्बेडकर द्वारा हिन्दू कोड बिल लाया गया। संविधान सभा में हिन्दू कोड बिल को प्रस्तुत करते हुए डा0 अम्बेडकर ने कहा कि हिन्दु समाज हमेशा से यह मानता रहा है कि उसे कानून बनाने का कोई अधिकार नहीं है। ये काम ईश्वर का और स्मृतियों का है, और

इसी कारण हिन्दू समाज में पीढ़ियों से कोई बदलाव हुआ ही नहीं। समाज ने कभी अपना उत्तरदायित्व समझा ही नहीं कि उनके सामाजिक, आर्थिक, वैधानिक जीवन में बदलाव का अधिकार उन्हीं को है। डा0 अम्बेडकर का यह मानना था कि महिलाओं की प्रगति ही सम्पूर्ण समाज की प्रगति का प्रतीक चिन्ह है। उन्होंने महिलाओं की स्थिति सुधारने हेतु भारतीय धर्मग्रन्थों, वेदों, स्मृतियों एवं परंपराओं का अत्यन्त सूक्ष्म अवलोकन करते हुए परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। अपने अवलोकन के उपरान्त उन्होंने यह स्वीकार किया कि भारतीय महिलाओं की निम्न स्थिति के लिए हिन्दू धर्मग्रन्थ और स्मृतियाँ उत्तरदायी हैं। उन्होंने मनुस्मृति में वर्णित एक उल्लेख की कटु आलोचना प्रस्तुत किया जिसके अन्तर्गत स्त्री को किशोरावस्था में पिता के संरक्षण में, युवावस्था में पति के संरक्षण में और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में ही रहने की बात की गई थी।

डा0 अम्बेडकर द्वारा कोड बिल में पारिवारिक सम्पत्ति के सन्दर्भ में महिलाओं के लिए प्रस्तुत प्रावधान अत्यन्त प्रगतिशील थे। वस्तुतः यह रुढ़िवादी भारतीय समाज में महिलाओं की परम्रागत दयनीय स्थिति में व्यापक बदलाव लाने में उपयोगी साबित होता। इसके माध्यम से महिलाओं की आर्थिक स्थिति मजबूत होती तथा इसके साथ ही उनकी सामाजिक स्थिति में भी बदलाव सम्भव होता। परन्तु इस प्रावधान का संविधान सभा में विरोध किया गया तथा सम्पत्ति के मामले में केवल पति की सम्पत्ति में ही महिलाओं की हिस्सेदारी पर बल दिया गया।

यह सर्वविदित है कि हिन्दू रीति–रिवाज, मान्यताएं एक धार्मिक दृष्टिकोण से प्राचीन काल से चली आ रही हैं। समय के साथ इसमें बदलाव न होने के कारण इन रीति–रिवाजों और मान्यताओं में अनेक विसंगतियों ने जन्म ले लिया। जब कभी इन विसंगतियों को समाप्त करने की बात उठी या परम्रागत मान्यताओं में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की बात की गई तो वह सामाजिक क्रान्ति का रूप ले लेता है। ठीक ऐसे ही हिन्दू कानून में तलाक की बात को भी धर्म से ही जोड़ा गया। जबकि वास्तविकता यह है कि तलाक का प्रावधान मजबूरी में निभाए जाने वाले वैवाहिक सम्बन्धों को समाप्त करने का एक बेहतर विकल्प प्रस्तुत करता है। परन्तु भारतीय पितृसत्तात्मक समाज ऐसे किसी विकल्प को मानने के लिए तैयार नहीं था जिसमें स्त्रियों को स्वतंत्रता के साथ जीवन जीने का अधिकार मिलता हो।

हिन्दू कोड बिल का समर्थन करते हुए संविधान सभा की सदस्य श्रीमती जयश्री ने इस बात पर बल दिया कि हमें एक ऐसे आदर्श एवं सार्वभौमिक कोड का निर्माण करना चाहिए जो कि हिन्दूओं के साथ–साथ मुस्लिम, पारसी और ईसाइयों पर भी समान रूप से लागू हो। इस आदर्श कोड में विवाह और उत्तराधिकार के समान कानून सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होंगे। हिन्दू कोड बिल के विरोधियों द्वारा तलाक के प्रावधान का इस आधार पर विरोध किया कि हिन्दू धर्म में विवाह कोई समझौता नहीं बल्कि एक संस्कार है जिसे तोड़ा नहीं जा सकता। हिन्दू सांस्कारिक विवाह के तर्क का खण्डन करते हुए श्रीमती जयश्री ने तर्क दिया कि विवाह के समय वर और वधु द्वारा एक–दूसरे से कुछ वचन लिए जाते है। किन्तु वर्तमान समय में इस विवाह का कोई आदर्श नहीं रह गया है। क्योंकि हिन्दू समाज में पुरुष चाहे कितने भी विवाह कर ले परन्तु स्त्रियों के समय समाज नैतिकता की दुहाई देने लगता है। हिन्दू समाज में जब किसी पुरुष की पत्नी का देहान्त होता है तो उसकी चिता जलाने के साथ ही उस पुरुष के दूसरे विवाह की बात चलने लगती है।

परन्तु स्त्रियों के साथ ऐसा नहीं होता है। साथ ही विवाह के समय किए गए वादे भी सिर्फ स्त्रियों पर ही लागू होते हैं।

निष्कर्ष–

हिन्दू कोड बिल पर संविधान सभा में हुई बहस तथा समाज की प्रतिक्रिया में दो पक्ष सामने आए। एक पक्ष प्रगतिशील विचारों का समर्थन करते हुए समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार करना चाहता था तो वहीं दूसरी तरफ कुछ रुढ़िवादी विचारों के समर्थक महिलाओं को यथास्थिति में ही रखना चाहते थें। रुढ़िवादी विचारधारा के लोगों द्वारा खड़े किए गए तमाम विरोधों के कारण ही यह बिल अपना वास्तविक स्वरूप ग्रहण नहीं कर सका। इस बिल के विरोध के साथ ही समाज के वास्तविक स्वरूप का भी स्पष्टीकरण हुआ जहाँ स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की व्यापक भागीदारी के बावजूद स्वतंत्र भारत में उनकी स्थिति में सुधार पर विरोध व्यक्त किए गए। इस बिल का संविधान सभा में पास न होना स्त्रियों के लिए अत्यन्त निराशाजनक था। इससे यह स्पष्ट हुआ कि समाज की आधी आबादी (स्त्रियों) के प्रति पितृसत्तात्मक समाज का क्या दृष्टिकोण है। इस प्रकार स्त्री अधिकार तथा लैंगिक न्याय के सन्दर्भ में भारतीय समाज में चेतना का विकास सुधारवादी युग से ही आंशिक रूप से शुरु हो गया था। राजनीतिक सक्रियता के युग तक आते–आते इस चेतना ने संगठित रूप ले लिया। जिसके फलस्वरूप भारतीय संविधान में आरम्भ से ही लैंगिक न्याय से सम्बन्धित अनेक ऐसे प्रावधानों को सम्मिलित कर लिया गया जिसके लिए पाश्चात्य देशों में एक लम्बा स्त्री आन्दोंलन चला। किन्तु साथ ही साथ भारतीय रुढ़िवादी पितृसत्तात्मक समाज की अपनी सीमायें व संकीर्णतायें भी थीं जो स्त्री अधिकार व लैंगिक न्याय के प्रश्न पर सशंकित थी। जिसका परिचय हिन्दु कोड बिल पर संविधान सभा की चर्चा में स्पष्ट रूप से सामने आये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

- कुसुम त्रिपाठी, स्त्री संघर्ष के सौ वर्ष, दिल्ली, भावना प्रकाशन, 2013.
- गोपा जोशी, भारत में स्त्री असमानता, दिल्ली, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, 2011.
- साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दें, नई दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, 2001.
- डा0 पुरुषोत्तम नागर, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2003.
- मेरी वोल्सटनक्राफ्ट, स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2003.
- मीनाक्षी सिंह, महिला कानून, गुड़गांव, महेन्द्र बुक कम्पनी, 2013.
- रामचंद्र गुहा, (अनु0) सुशांत झा, भारत गांधी के बाद, नई दिल्ली, पेंगुइन बुक्स, 2017.
- वी. एन. सिंह, जनमेजय सिंह, नारीवाद, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशन्स, 2016.
- वी. एन. सिंह, जनमेजय सिंह, आधुनिकता एवं महिला सशक्तिकरण, जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स, 2010.
- सुभाष कश्यप, हमारा संविधान, नई दिल्ली, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2015